SUBJECT - HISTORY
CLASS - THIRD SEMESTER
Paper - IV - C
Political History of Modern India
(up to 1857 A.D.)

भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना

काल कोठरी की घटना से आप क्या समझते है ?

जून, 1756 में नवाब सिराजुद्दौला द्वारा कलकत्ता पर अधिकार कर लेने के बाद 20 जून 1756 की रात को कलकत्ता के विलियम फोर्ट में स्थित एक कमरे (18 x 14 feet) में 146 युद्ध बन्दियों को बन्द कर दिया, जिनमें से प्रातः काल तक दम घुटने के कारण 123 अंग्रेज युद्ध बन्दियों की मत्यु हो गई। इसी घटना के अधिकांश भारतीय इतिहासकारों द्वारा सही नहीं माना जाता है। क्योंकि बंगाल कलकत्ता प्रेसिडेंसी कोर्ट ऑफ डायरेक्ट्रस के साथ उस दौरान जो भी पत्र व्यवहार हुआ उसमे इस घटना का कोई उल्लेख नहीं मिलता और इसके साथ ही अलीनगर की संधि (फरवरी 1757) में अंग्रेजों द्वारा इन मृतक युद्ध बन्दियों का कोई उल्लेख नहीं किया गया।

और संभवतः यह मनगढ़त कहानी हालवेल के द्वारा तैयार की गई और इसका मुख्य उद्देश्य सिराजुद्दौल से बदला लेने के लिये मद्रास प्रेसिडेंसी के अंग्रेजों की भावनाओं को उत्तेजित करना था।

प्लासी का युद्ध

जून 1757 में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला तथा क्लाइव के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना के बीच प्लासी का युद्ध हुआ जिसमें नवाब की पराजय हुई। 28 जून, 1757 को अंग्रेजों ने मीर जाफर को बंगाल का नवाब नियुक्त कर दिया।

युद्ध के प्रमुख कारणों में दोनों ही पक्षों की ओर से अलीनगर की संधि की शर्तों की पालना नहीं करना अंग्रेजों ने नवाब पर अनेक दोष लगाये और नवाब के विरुद्ध षड्यन्त्र किए तथा क्लाइव बंगाल में अपना प्रभाव स्थापित करने को आमदा था।

नवाब की सेना में 50000 सैनिक थे जबकि क्लाइव की सेना में 800 यूरोपीय तथा 2200 भारतीय सैनिक थे। नवाब के कुछ सेनानायक क्लाइव से मिले हुए थे। मीर मुइनुद्दीन ने ही नवाब की तरफ से अंग्रेजी सेना का सामना किया था। अर्थात् बिना किसी विशेष सैनिक प्रयास के क्लाइव युद्ध जीतता है।

प्लासी का युद्ध जो भारत के अत्यंत निर्णायक युद्धों में एक माना जाता है। के मुख्य परिणाम अग्रांकित है –

1. इस युद्ध के बाद ब्रिटिश कंपनी का बंगाल, बिहार, उड़ीसा पर अप्रत्यक्ष रूप से पूर्ण राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित हो गया क्योंकि इस युद्ध के बाद मीर जाफर को कंपनी द्वारा बंगाल का नवाब नियुक्त किया गया वह पूर्ण रूप से अपने अस्तित्व के लिये कंपनी पर निर्भर हो गया और वह कंपनी की मदद से बंगाल का नवाव नियुक्त हुआ।

2. इस युद्ध के बाद मीर जाफर द्वारा कंपनी को 24 परगने जागीर में दिये गये और लगभग 2½ करोड़ रूपये की राशी नगद दी गई उससे कंपनी की आर्थिक स्थिति अत्यंत मजबूत हो गई।

3. यद्यपि जी. बी. मालसेन जैसे कुछ अंग्रेज इतिहासकरों ने प्लासी के युद्ध को सैनिक दृष्टि से एक अत्यंत महत्वपूर्ण युद्ध माना किंतु उनका यह मत उचित नहीं है क्योंकि यह युद्ध कंपनी द्वारा अपनी ताकत के बजाय कूटनीति व षड़यंत्र के द्वारा जीता था।

औरगंजेब की मृत्यु के बाद जब मुगल साम्राज्य का विघटन प्रारंभ हो गया तो उसके फलस्वरूप भारत में मुख्यतः तीन स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गये।

(1) **बंगाल** :– बंगाल के स्वतंत्र राज्य की स्थापना 1717 A.D. में मुगल सम्राट फर्रूखसीयर के समय में मुर्शीद कुलीखां के द्वारा की गई।

(2) **अवंध** :– अवध के स्वतंत्र राज्य की स्थापना 1722 A.D. में मुगल सम्राट मुहम्मद शाह के समय में सआदत खां बुरहानमुल्क द्वारा की गई।

(3) **हैदराबाद** :– हैदराबाद के स्वतंत्र राज्य की स्थापना 1724 AD में मुगल सम्राट मुहम्मद शाह के समय में निजाम उल मुल्क आसफ जहाँके द्वारा की गई। इसका मूलनाम चिनकिलिज खाँ था और उसे निजाम उल मुल्क आसफ जहाँ की उपाधि मुगल सम्राट मुहम्मद शाह ने दी थी ।

बंगाल के नवाब

(1) **मुर्शीद कुली खां** :– जो बंगाल के स्वतंत्र राज्य का संस्थापक था। मुशीद कुली खां 1717 से 1727 तक बंगाल के नवाब के पद पर रहा। इनके द्वारा भूराजस्व व्यवस्था की जो पद्धति लागू की गई उसके अन्तर्गत उसने भूमिकर वसूली का कार्य जमींदारों को ठेके पर दिये जाने की व्यवस्था को लागू किया।

(2) **शुजाउद्दीन मुहम्मद खां** :– मुर्शीद कुली खां के बाद उसका दामाद सुजाउद्दीन मुहम्मद खां बंगाल का नवाब नियुक्त हुआ। वह 1727 से 1739 तक रहा।

(3) **सरफराजखां (1739–40)** :– सुजाउद्दीन मुहम्मद खां के बाद उसका पुत्र सरफराज खां (1739–40) तक बंगाल का नवाब रहा।

(4) **अलीवर्दी खां (1740–56)** :– अलीवर्दी खां सरफराज खां के समय में बिहार प्रांत का नायब सुबेदार था किंतु 1740 में सरफराज खां को हटाकर

अलीवर्दी खां स्वयं बंगाल का नवाब बन गया और 1740–56 तक वह नवाब के पद पर रहा।

(5) (सिराजुद्दौला 1756–57) :– अलीवर्दी खां की मृत्यु के बाद 1756 AD में सिराजुद्दौला बंगाल का नवाब बना वह अलीवर्दी खां की पुत्री का पुत्र (दोहिता) था और इसके समय में प्लासी का युद्ध हुआ।

जब तृतीय कर्नाटक युद्ध आरंभ होने की संभावना को देखते हुये नवाब सिराजुद्दौला के आदेश पर अग्रेजों द्वारा कलकत्ता में स्थित अपने विलियम फोर्ट की किलेबन्दी किये जाने के कार्य का बंद नहीं किया तो तब जून 1756 AD में सिराजुद्दौला द्वारा कलकत्ता पर आक्रमण करके और अंग्रेजों को वहाँ से निष्कासित करके उस पर अपना कब्जा कर लिया।

इस समय बंगाल (कलकत्ता) प्रेसिडेंसी का गवर्नर ड्रेक (William RogerDrake) था।

- बंगाल की राजधानी मुर्शीद कुली खां ने ढ़ाका से मुर्शिदाबद स्थानांतरित कर दिया था।
- नवाब सिराजुद्दौला द्वारा कलकत्ता पर अधिकार कर लेने के बाद कलकत्ता के विलियम फोर्ट में स्थित एक कमरे में 146 अंग्रेज युद्ध बन्दियों को 20 जून 1756 की रात को कैद कर लिया जिसे काल कोठरी की घटना के नाम से जाना जाता है।

उन 146 युद्ध बन्दियों में मेरी कैरी नामक महिला भी थी। और जो 23 जीवित युद्ध बन्दियों के साथ मैरी कैरी के साथ हालवैल भी था। जिसके (हालवल) बारे में माना जाता है कि उसी ने इस काल कोठरी की घटना की मनगढ़त कहानी तयार की थी।

मद्रास प्रेसिडेंसी ने कलकत्ता पर पुनः अधिकार करने के लिये दो अग्रेजी सेना (A) एक रोबर्ट क्लाइव के नेतृत्व में थल सेना और (B) दूसरी वाटसन के नेतृत्व में एक जल सेना भेजी। और इन दानों के नेतृत्व में

ब्रिटिश सेना जनवरी 1757 AD में सिराजुद्दौला स कलकत्ता को वापस छीन लिया। अग्रेंजों द्वारा अपनी पहली टकसाल 1757 AD में कलकत्ता में स्थापित की गई।

(6) **मीर जाफर (1757–60)**– प्लासी युद्ध के बाद कंपनी द्वारा मीर जाफर को बंगाल का नवाब नियुक्त किया गया और वह 1757–60 तक बंगाल का नवाब रहा।

(7) **मीर कासिम (1760–63)** :– 1760 AD में कंपनी और मीर जाफर के बीच सम्बन्ध खराब हो जाने के फलस्वरूप कंपनी द्वारा मीर जाफर को हटाकर उसके दामाद मीर कासिम को बंगाल का नवाब नियुक्त किया गया और उसके बदल में मीर कासिम द्वारा कंपनी को बर्दमान, मिदनापुर और चटगाँव में तीन जिसे जागीर मे दिये गये किंतु जब मीर कासिम ने धीरे–धीरे अपनी सैनिक शक्ति का गठन करना शुरू किया और अंग्रेजों के हस्तक्षेप से बचने के लिये अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से मुँगेर बिहार) हस्तातंरित कर ली तब कंपनी और मीर कासिम के बीच सम्बन्ध खराब हो गये किंतु अन्ततः कंपनी और मीरकासिम के बीच झगड़े का मुख्य कारण अग्रेजों द्वारा दस्तक का दुरूपयोग करना और मीर कासिम द्वारा भारतीय व्यापारियों को भी बंगाल में बिना कोई व्यापारिक शुल्क दिये व्यापार करने की छूट प्रदान कर दी।

(8) **मीरजाफर (1763–65) (दूसरी बार)**– 1763AD में मीरकासिम को हटाकर कंपनी द्वारा मीर जाफर को पुनः बंगाल का नवाब बना दिया और वह 1765 तक इस पद पर रहा।

और मीर जाफर ने राजधानी मुंगेर से मुर्शिदाबाद वापस ले आया।

(9) **निजामुद्दौल (1765–66 तक)**

(10) **शैफ–उद–दौला (1766–70 तक)**

(11) **मुबारक–उद्–दौला (1770–75 तक)**

बक्सर का युद्ध

- जब कंपनी द्वारा मीरकासिम को 1763 A.D. में नवाब के पद से हटा दिया तो तब उसने नवाब का पद पुनः प्राप्त करने के लिये अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सैनिक मदद प्राप्त करने का प्रयास किया जिसके फलस्वरूप ही शुजाउद्दौला मुगल सम्राट शाहआलम II और मीरकासिम की संयुक्त सेना और मेजर हेक्टर मुनरो के नेतृत्व में अग्रेंजी सेना के बीच 22 अक्टू. 1764 AD को बक्सर का युद्ध हुआ जिसमें इन तीनों की संयुक्त सेना को अग्रेजों द्वारा पराजित कर दिया गया।
- इस युद्ध में अग्रेजों की सैनिक संख्या 8000 थी वही इन तीनों की संयुक्त सेना 45,000–50,000 के बीच मानी जाती थी।
- बक्सर के युद्ध के समय बंगाल या कलकत्ता प्रेसीडेंन्सी का गवर्नर बेन्सिटार्ट था।

बक्सर युद्ध जो भारत के अत्यंत महत्वपूर्ण युद्धों में से एक माना जाता हैं के मुख्य परिणाम अग्रलिखित है –

1. इस युद्ध के बाद ब्रिटिश कंपनी का राजनैतिक प्रभुत्व बंगाल से बढ़कर अवध पर भी स्थापित हो गया।
2. इस युद्ध में विजय प्राप्त कर लेने के बाद कंपनी की प्रसिद्धि संपूर्ण भारत में फैल गई और अब कंपनी की गिनती भारती की एक प्रमुख राजनैतिक और सैनिक शक्ति के रूप में की जाने लगी।
3. इस युद्ध ने भारतीय सैन्य व्यवस्था पर यूरोपीय सैन्य–व्यवस्था की श्रैष्ठता को स्थापित कर दिया गया और अब भारतीय शासकों ने भी अपनी सेनाओं का यूरोपीय पद्धति पर पुर्नगठन करना प्रारंभ कर दिया।

- बक्सर युद्ध के बाद Court of directions के द्वारा रोबर्ट क्लाइव को एक बार पुनः 1765–67 के दौरान बंगाल (कलकत्ता) प्रेसीडेन्सी का पुनः गवर्नर नियुक्त किया गया।

- बक्सर युद्ध के बाद 1765 में रोबर्ट क्लाइव इलाहबाद और मुगल सम्राट शाहआलम II के बीच इलाहबाद की संधि हुई जिसके द्वारा मुगल सम्राट ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा के दीवानी अधिकार कंपनी को प्रदान कर दिये और साथ ही उत्तरी सरकार के चार जिले (राजामुंदी, शिकाकोल, उलोर मुस्तफानगर) कंपनी को प्रदान कर दिये।

- इलाहबाद संधि के बाद राबर्ट क्लाइव द्वारा 1765 AD में बंगाल बिहार और उड़ीसा में जो शासन व्यवस्था लागू की गई उसे बंगाल का द्वैध शासन कहा जाता है। जो 1765–72 तक चला। और बाद में 1772 AD में बंगाल प्रेसीडेसी के तत्कालीन गवर्नर वारेन हेस्टिंग्स ने इस दोहरे शासन को समाप्त करके बंगाल का शासन सीधा कंपनी के हाथ में ले लिया।

- बंगाल में द्वैध शासन के अन्तगत बंगाल के दीवानी मामलों का प्रशासन कंपनी ने अपने हाथ में ले लिया और निजामत मामलों का प्रशासन बंगाल के नवाब को सौंप दिया और कंपनी की तरफ से दीवानी मामलों का शासन देखने के लिये राबर्ट क्लाइव द्वारा दो नायब दीवान नियुक्त कर दिये गये (1) सिताबराय (2) मुहम्मद रजा खां

सिताबराय को बिहार का नायब दीवान और मुहम्मद रजा खाँ को बंगाल और उड़ीसा का नायब दीवान नियुक्त किया।

चूंकि इस समय बंगाल का नवाब निजामुद्दौला वयस्क नहीं था। इसलिये उसकी मदद के लिये कंपनी ने मुहम्मद रजा खाँ को ही बंगाल के नवाब का नायब नाजिम नियुक्त कर दिया।

बंगाल के दोहरा शासन आप क्या समझते है ?

इलाहबाद की संधि के बाद रोबर्ट क्लाइव द्वारा 1765 AD में बंगाल के प्रशासन को दो भागों में बाँट दिया गया था। 1. दीवानी विषय 2. निजामत विषय दीवानी विषयों का प्रशासन कंपनी ने अपने स्वयं के हाथ में ले लिया जबकि निजामत विषयों का प्रशासन क्लाइव द्वारा बंगाल के नवाब को सौंप दिया गया। इस प्रकार बंगाल के प्रशासन को दो भागों में बाँटकर दोनों का प्रशासन अलग–अलग व्यक्तियों को सौंप दिया गया इसे ही बंगाल का द्वैध शासन के नाम से जाना जाता है जो 1765 से 1772 तक प्रचलित रहा।

रेग्यूलेटिंग अधिनियम :–

ब्रिटिश संसद द्वारा Regulating Act 1773 AD में पारित किया गया। इस एक्ट को पारित करन के पीछे ब्रिटिश संसद का मुख्य उद्देश्य :–

1. भारत में कंपनी के लिये प्रशासन का गठन करना था।
2. और दुसरा उद्देश्य कंपनी को व्यापारिक मान्यता के साथ–साथ राजनैतिक मान्यत भी प्रदान करना था।

Regulating Act के मुख्य प्रावधान :–

1. बंगाल के गवर्नर के पद का नाम बदलकर बंगाल का गवर्नर जनरल कर दिया गय तथा मद्रास और बम्बई के गवर्नरों पर उसका नियन्त्रण स्थापित कर दिया।
2. गवर्नर जनरल की मदद के लिये चार सदस्यों की परिषद का गठन किया गय जिसे गवर्नर जनरल की परिषद के नाम से जान जाता है। और रेग्यूलेटिंग एक्ट द्वारा गवर्नर जनरल की परिषद के प्रथम चार सदस्य (1) क्लेबरिंग (2) फिलिप फ्रांन्सीज (3) मानसन (4) बारवैल थे।
3. कलकत्ता में एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई और इस का पहला मुख्य न्यायधीश सर एलिजाह एम्पे था। किंतु इस सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार बंगाल, बिहर, उड़ीसा में रहने वाले यूरोपीय नागरिकों पर ही लागू किया गया।

4. यह रेग्यूलेटिंग एक्ट 1771 में लागु हुआ और इस समय वारेन हेस्टिग्स बंगाल के गवर्नर के पद पर नियुक्त था इसलिये वारेन हेस्टिग्स बंगाल का पहला गवर्नर जनरल/वायसराय कहलाया।

रेग्यूलेटिंग एक्ट का महत्व

रेग्यूलेटिंग एक्ट का सबसे बड़ा महत्व यह है कि इसी एक्ट के द्वारा पहली बार ब्रिटिश संसद द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासन में हस्तक्षेप

भारत में मराठों की शक्ति के पतन के मुख्य कारणों की विवेचना कीजिये।

या

अंग्रेजों के विरूद्ध मराठों की असफलता के क्या कारण थे।

औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य का जो तेजी से पतन प्रारंभ हुआ, उसका लाभ उठाकर 18वीं शताब्दी के प्रारंभ में मराठे भारत की सर्वोच्च राजनीति और सैनिक शक्ति बन गये, किंतु बाद में जब अग्रेजों के साथ मराठों का संघर्ष प्रारंभ हुआ तब अग्रेजों ने आसानी से मराठों को पराजीत कर दिया था। अतः ऐसी कौनसी परिस्थितियाँ थी, जिनके फलस्वरूप मराठें अग्रेजों के विरूद्ध आसानी से पराजीत हो गये थे, इसकी विवेचना निम्न रूप में कर सकते है।

(1) मराठों क दुर्बल सैन्य संगठन :–

मराठों की तुलना में अग्रेजों का सैन्य संगठन निश्चित रूप से काफी श्रेष्ठ था।

S. N. Sen ने अपनी पुस्तक 'Military system of the marathas" में मराठों की पराजय का एक मुख्य कारण यह बताया है कि मराठों द्वारा अपनी सैन्य प्रणाली को छोड़कर यूरोपीय सैन्य प्रणाली को जो अपना लिया गया था, उसके फलस्वरूप मराठों को अपनी सेना में अन्य जातियों के सैनिकों को भी जो भर्ती करना पड़ा, उसके कारण मराठा सेना में राष्ट्रीयता की भावना लुप्त हो गई थी। जो अब तक उनकी सफलता का एक मुख्य कारण मानी जाती थी।

इसी तरह सर अल्फ्रेड ने अपनी पुस्तक ''भारत में अग्रेंजी सैनिक शक्ति का उत्थान व विकास'' में लिखा है कि मराठों द्वारा अपनी छापामार कूटनीति का परित्याग करके और यूरोपीय सैन्य प्रणाली को जो अपना लिया गया था, वह उनकी पराजय का मुख्य कारण थी।

यद्यपि मराठों द्वारा यूरोपीय सैन्य–प्रणाली और उनके हथियारों को तो अपना लिया था, किंतु वे उसमें पूर्णदक्षता प्राप्त नहीं कर सके थे और यह भी उनकी अग्रेंजों के विरूद्ध असफलता का एक मुख्य कारण सिद्ध हुई।

मराठा सेना की एक ओर मुख्य विशेषता उनकी घूड़सवार सेना मानी जाती थी और परि मराठे यूरोपीय सैन्य पद्धति के साथ अपनी द्रुतगामी घुड़सवार सेना का समन्वय करके प्रयोग करते तो वे अग्रेजों के विरूद्ध अधिक सफलता हासिल कर सकते थे।

(2) मराठे राज्य की आंतरिक दुर्बलता

मराठा राज्य एक संगठित राजतंत्र न होकर एक संघ राज्य था, जिसका अध्यक्ष पेशवा होता था, कितु दुर्भाग्य से 1772 AD में पेशवा माधवराव की मृत्यु हो जाने के बद जो भी पेशवा नियुक्त हुये वे सभी पूर्णतया दुर्बल और अयोग्य थे, जो मराठा सरदारों पर अपना पूर्ण नियन्त्रण बनाये रखने में असफल रहे। और उनकी दुर्बलता का लाभ उठाकर मराठा सरदारों द्वारा एक स्वतंत्र शासक के रूप में कार्य करना प्रारंभ कर दिया गया, तथा मराठा राज्य की हितों की जगह पर अपने स्वार्थो की पूर्ति और अपना–अपना प्रभाव बढ़ाने पर अधिक ध्यान देने लगे।

अग्रेंजों ने मराठा सरदारों के इस आंतरिक कलह और फूट का लाभ उठाकर उन्हें एक–एक करके आसानी से पराजीत कर दिया था।

(3) योग्य नेतृत्व का अभाव :–

18 वीं शताब्दी के अंत तक एक–एक करके लगभग सभी योग्य मराठा सरदारों की मृत्यु हो चुको थी। उदाहरण के लिये 1794 ADमें महादजी सिंधिया,

1795 AD में तुकोजी होल्कर और 1800 AD में नाना फडनवीस की मृत्यु हो चुकी थी।

इन मराठा सरदारों की मृत्यु के बाद मराठें का नेतृत्व पेशवा बाजीराव II, दौलतराव सिंधिया और जसवन्त राव होल्कर जैसे मराठा सरदारों के हाथों में आ गया जो नितांत स्वार्थी और षड़यंत्रकारी थे। और उनमें योग्यता और चरित्र बल का अभाव था।

ये मराठा सरदार कूटनीति, राजनैतिक कौशल और युद्ध विद्या में लॉर्ड वेलेजली, लॉर्ड हैस्टिग्स, आर्थर वैलेजली, जैसे ब्रिटिश गवर्नर जनरलो और सेनानायकों का मुकाबला नहीं कर सकते थे, और यह भी मराठा शक्ति के पतन का मुख्य कारण सिद्ध हुआ।

(4) मराठों द्वारा अपने राज्य की आर्थिक व्यवस्था पर ध्यान न देना

यद्यपि मराठों द्वारा एक विन्यास साम्राज्य, स्थापित कर किया गया था। किंतु उनके द्वारा कभी भी अपने राज्य में कृषि, उद्योग और व्यापार के विकास पर, अपनी जनता की आर्थिक समृद्धि पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। यहाँ तक की मराठों द्वारा उत्तर भारत में जो विशाल भू–भाग पर अधिकार कर लिया गया था, वहाँ भी मराठों न अपना प्रत्यक्ष शासन स्थापित करने और एक सुदृढ़ आर्थिकढीचा संगठित करने पर कोई ध्यान नहीं दिया, बल्कि उन प्रदेशों से भी मराठों ने चौंथ वसूली करने और उनमें लूटमार करने पर ही अधिक ध्यान दिया।

अतः ऐसा राज्य जो अपनी आय के लिये लूटमार पर निर्भर हो, वह कभी–भी स्थायी नहीं हो सकता था।

(5) अंग्रेजों की श्रेष्ठ कूटनीति और गुप्तचर प्रणाली –:

अग्रेंज मराठों की तुलना में निश्चित रूप से श्रेष्ठ कूटनीतिज्ञ माने जाते थे। अग्रेंजों ने मराठों के साथ संघर्ष में सदैव अपनी कूटनीति से इस बात का ध्यान रखा की उन्हें मराठों सरदारों की सम्मिलित शक्ति का सामना न करना पड़ा।

और मराठा सरदारों की आंतरिक फूट के कारण अग्रेंज सदैव अपने इस प्रयास में काफी हद तक सफल रहे। मराठों की तुलना में अग्रेंजों की गुप्तचर प्रणाली भी काफी श्रेष्ठ मानी जाती थी और अग्रेंज अपने गुप्तचरों क माध्यमों से मराठों की रणनीति और उनके कुछ प्रयासों के बारे में पूर्ण जानकारी प्राप्त करके और उसी के अनुसार अपनी रणनीति बनाकर उन्हें पराजित कर देते थे। जबकि मराठों द्वारा अग्रेंजों की रणनीति के बारे में कभी–भी जानकारी प्राप्त करने का कोई प्रयास नहीं किया गया।

इस प्रकार उपरोक्त कारणों के फलस्वरूप ही अन्त–तोगत्वा मराठे अग्रेंजों के विरूद्ध असफल रहे। और उपरोक्त कारण ही भारत में मराठा शक्ति के पतन के मुख्य कारण जिक्र किये।

मराठा राजनीति में नाना–फड़नवीस की भूमिका की विवेचना कीजियें?

नाना ुफड़नवीस का मराठा राजनीति में उदय पेशवा माधव्रराव के समय में हुआ, जब 1773AD में रघुनाथ राव राघोबा ने पेशवा नारायण राव की हत्या करके स्वयं पेशवा बनना चाहा तब अन्य मराठा सरदारों के साथ मिलकर नाना फडनवीस ने रघुनाथ राव के शिशु पुत्र माधवनारायणैराव को पेशवा के पद पर नियुक्त कर दिया था, चूकिं पेशवा माघ्वनारायणराव वयस्क नहीं था, अतः उसकी मदद के लिये नाना फड़नवीस के नेतृत्व में 12 मराठा सरदारों की एक संरक्षक परिषद बनाई गई। 1773 से लेकर 1800 AD में नाना फड़नवीस की मृत्यु हो जाने तक मराठा राज्य की वास्तविक बागड़ौर नाना फड़नवीस के हाथ में रही थी। और इस अवधि में वह न केवल मराठा संघ की एकता को बरकरार रखने में सफल हुआ बल्कि प्रथम आग्ल–मराठा युद्ध में अग्रेंजों के विरूद्ध मराठों की सफलता में नाना फड़नवीस की ही महत्वपूर्ण भूमिका रही थी।

हैदरअली के हाथ में मैसूर राज्य की बागडौर आने के पहले मैंसूर पर वाडियार (उडियार) वंश का शासन था।

हैदरअली ने मैसूर राज्य में अपना जीवन एक सैनिक के रूप में प्रारंभ किया था, और उस समय मैसूर का शासक कृष्ण राज वाडियार था। किंतु मैसूर राज्य की वास्तविक बागड़ोर उसके प्रधानमंत्री नंदराज के हाथ में थी।

हैदरअली ने बाद में अपनी सैनिक योग्यता और स्वामी भक्ति के बल पर धीरे–धीरे नंदराज का विश्वास प्राप्त कर लिया और 1755AD में नंदराज के द्वारा हैदरअली को डिंडीगल जिले का फौजदार नियुक्त कर दिया।

Dendigal के फौजदार के पद पर रहते हुयेHaider Ali ने आस–पास के प्रदेशें में लूटमार करके, न केवल उसने काफी धनइकट्ठा कर लिया था अपितु डिंडीगल में उसने हथियारों का भी बहुत बड़ा जखीरा (शस्त्रागारों) भी इकट्ठा कर लिया और उसने अपनी सैनिक शक्ति में काफी वृद्धि करली।

बाद में नंदराज की मृत्यु हो जाने के बाद 1761 AD में Haider Ali ने Mysore के शासक कृष्ण राज वाडियार को कैद करके वह स्वयं मैसूर का वास्तविक शासक बन गया।

दक्षिण भारत में हैदरअली के नेतृत्व में बढ़ती हुई मैसूर की शक्ति से विशेष रूप से अग्रेंज और हैदराबद का निजाम अपने हितों के लिये हानिकारक मानते थे। और मद्रास प्रेसिडेंसी की अग्रेंज सरकर दक्षिण भारत में अपने राजनैतिक प्रभुत्व का विस्तार करना चाहती थी, जिसके फलस्वरूप ही अग्रेजों और मैसूर राज्य के मध्य निम्नलिखित 4 युद्ध लडे गये।

First Anglo-mysore war (1766-69)

- प्रथम आग्ल मैसूर युद्ध के समय मद्रास प्रेसिडेंसी का अग्रेंज गवर्नर एण्डरसन था।
- 1765 AD में हैदराबाद के तत्कालीन शासक निजामअली और मद्रास प्रेंसिडेंसी के बीच हैदरअली के विरूद्ध एक समझोता हुआ जिसके अनुसार

इन दोनों शक्तियों ने मिलकर मैसूर पर आक्रमण करने की योजना बनाई, किंतु बाद में मराठें भी हैदरअली के विरूद्ध इस गुट में सम्मिलित हो गये, इस प्रकार 1766 AD में हैदरअली के विरूद्ध इन तीनों का एक त्रिगुट बन गया।

- प्रथम आग्ल–मैसूर युद्ध का सबस प्रमुख और तत्कालीन कारण मद्रास प्रेसिडेंसी की अग्रेंज सरकार द्वारा दक्षिण की राजनीति में हस्तक्षेप करना मान जाता है।
- प्रथम आग्ल–मैसूर युद्ध के दौरान स्मिथ ब्रिटिश सेना का मुख्य सेनापति था।
- किंतु प्रथम आग्ल–मैसूर युद्ध में सर्वप्रथम मैसूर पर पेशवा माधवराव के नेतृत्व में मराठा सेना द्वारा आक्रमण किया गया था।

किंतु हैदरअली ने कूटनीति का प्रयोग करते हुये पेशवा माधवराव को 35 लाख रूपये देकर इस युद्ध से अलग कर दिया। तथा बाद में वह हैदराबाद के निजाम को भी धर्म का वस्ता देकर इस युद्ध से तटस्थ करने में सफल हो गया।

मराठों और हैदराबद के निजाम को तटस्थ करने के बाद हैदरअली ने 1768 AD में मंगलौर पर आक्रमण करके उसे अग्रेजों से लिया, तथा इसके बद उसने मद्रास का घेरा डाल दिया था। किंतु अन्ततः मद्रास एडरसन प्रेसिडेंसी के गवर्नर एण्डरसन की प्रार्थना पर 1769 AD में हैदरअली और अग्रेजों के बीच मद्रास की संधि हो गई जिसके मुख्य प्रावधान सग्रांकित थे।

1. हैदरअली और अग्रेंज दोनों ने एक–दूसरे के जीते हुये प्रदेश वापस लौटा दिये।
2. करूर का जिला जो हैदरअली द्वारा कर्नाटक के नवाब से छीन लिया गया था वह हैदरअली के पास ही रहने दिया गया।
3. यदि कोई तीसरी शक्ति इन दोनों पर आक्रमण करती है तो उसके विरूद्ध वे एक–दूसरे की मदद करेगें।

इस प्रकार इस मद्रास की संधि के साथ ही 1769 AD में प्रथम आग्ल–मैसूर युद्ध समाप्त हो गय। ऐसा माना जाता है कि मद्रास की संधि की सारी शर्ते हैदरअली द्वारा निर्धारित की गई थी और वह प्रथम आग्ल–मैसूर युद्ध में विजेता रहा थ, किंतु इसके बावजूद भी उसने मद्रास की संधि में बहुत ही उदार शर्ते निर्धारित की थी।

इसका कारण यह माना जाता है कि हैदरअली हैदराबाद के निजाम और मराठों की तुलना में अग्रेंजों को अधिक विश्वसनीय मित्र मानता था और वह उनके साथ स्थायी रूप से मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लेना चाहता था।

Second Anglo-Mysore war 1780-84

- द्वितीय आग्ल–मैसूर युद्ध के समय मद्रास प्रेसिडेंसी का गवर्नर मैकार्टनें था।
- 1771 AD में जब पेशवा माधवराव द्वारा मैसूर पर आक्रमण किया गया, तब मद्रास की संधि के अनुसार जब अग्रेंजों ने मराठों के विरूद्ध हैदरअली की कोई मदद नहीं की, तब हैदरअली के अग्रेंजों के साथ सम्बन्ध काफी खराब हो गये, और वह अग्रेंजें से इसका बदला लेना चाहता था, इसी समय अग्रेंजों और मराठों के बीच प्रथम आग्ल–मराठा युद्ध प्रारंभ हो जने के कारण अग्रेंजों के मराठों के साथ भी सम्बन्ध कफी खराब थे। इसके साथ ही हैदराबाद का तत्कालीन शासक निजामअली भी अग्रेंजों से सख्त नाराज थ, क्योंकि 1765 AD की संधि के अनुसार उत्तरी सरकार के चार जिलों के बदले में (7 लाख रूपये) वार्षिक जो निजाम के देना तय हुआ था, उसे अग्रेंजों ने बंद कर दिय।

इन सबका लाभ उठाकर हैदरअली ने अग्रेजों के विरूद्ध मराठों और हैदराबाद के निजाम के साथ मिलकर एक त्रिगुट बनाया। जिसके पीछे हैदरअली का मुख्य उद्देश्य भविष्य में अग्रेंजों के साथ होने वाले युद्ध में वह इन दोनों शक्तियों को तटस्थ बना देना चाहता था।

- द्वितीय आग्ल मैसर युद्ध का सबसे प्रमुख और तात्कालीक कारण 1779 AD में अग्रेंजों द्वारा माही (mahe) की फ्रांसीसी फैक्ट्री पर अपना अधिकार कर लेना, जिसे हैदरअली अपना सरक्षित प्रदेश मानता था।
- द्वितीय आग्ल–मैसूर युद्ध के दौरन अग्रेंजी सेना के दो मुख्य सेनानायक सर अपरकूट और जनरल बैली थे।
- द्वितीय आग्ल–मैसूर फर के दौरान चार अग्रलिखित लडाईयाँ लड़ी गई।

(1) आरनी का युद्ध

(2) पोर्टोनोवा का युद्ध

(3) पोल्लिलोर का युद्ध

(4) सौलिगेर का युद्ध

(1) आरनी का युद्ध :–1780 AD में जनरल बैली के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना और टीपू के नेतृत्व में मैसूर सेना के मध्य हुआ, जिसमें टीपू द्वारा अग्रेंजी सेना को पराजीत कर दिया गया और जनरल बैली सहित बहुत बड़ी संख्या में अग्रेंज सैनिकों का टीपू द्वारा वध करवा दिया गया।

आसी के युर में अग्रेंजों की पराजय का बदला लेने के लिये युद्ध में तत्कालीन गवर्नर जनरल वारेन हैस्टिंग्स ने इस युद्ध में हस्तक्षेप किया और उसने जनरल आयरकूट के नेतृत्व में एक ब्रिटिश सेना बंगाल से दक्षिण भारत में भेजी।

(2) Porto-Nova का युद्ध :–जनरल आयरकूट के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना और हैदरअली के मध्य 1781 AD में Porto-Nora की प्रसिद्ध लडाई लड़ी गई। जिसमें हैदरअली की पराजय हो गई।

(3) Polilor का युद्ध :– किंतु Porto Nora के युद्ध के बाद 1782 AD में हैदरअली और जनरल आयरकूट के बीच पोल्लिलोर का युद्ध और सौलिंगेर का युद्ध लडा गय। ये दोनों युद्ध अनिर्णायक रहे थे।

किंतु 1782 AD में द्वितीय आग्ल मैसूर युद्ध के दौरान ही हैदरअली की मृत्यु हो जाने के कारण टीपू मैसूर का शासक बना और उसने भी इस युद्ध को जारी रखा। और 1783 AD में टीपू को अग्रेंजों के विरूद्ध इस युद्ध में एक बहुत बड़ी सफलता मिली, जब जनरल मैथ्यूज की कमान में एक अग्रेंजी सेना को पराजीत करके जनरल मैथ्यूज को कैद कर लिया गय। किंतु टीपू स्वयं इस युद्ध को लम्बे समय तक चलाने के पक्ष में नहीं था। और मदास प्रेसिडेंसी का गवर्नर में कार्टने भी इस युद्ध को समाप्त कर देना चाहता थ।

अतः 1784 AD में टीपू और अग्रेंजों के बीच मंगलौर की संधि हुई जिसके मुख्य प्रावधन निम्न थे –

1. दोनों एक–दूसरे के जीते हुये प्रदेश वापस लौटा देगें।
2. दोनों एक–दूसरे के युद्ध–बन्दियों को वापस लौटा देगे।

इस प्रकार 1784–AD में इस मंगलौर की संधि के साथ द्वितीय आग्ल–मैसूर युद्ध समाप्त हो गया।

III Anglo-Mysore war (1790–92)

- Third Anglo-Mysore war के समय लॉर्ड कार्नवालिस गवर्नर जनरल के पद पर नियुक्त था।
- टीपू जो इस समय मैसूर का शासक था, अग्रेंजों के विरूद्ध भारत में उनका सबसे बड़ा शत्रु माना जाता था, और वह भारत से अग्रेंजी सत्ता के समाप्त करने के उद्देश्य से अग्रेंजों के विरूद्ध फ्रांस, टर्की, काबुल, आदि विदेशी शक्तियों से भी सैनिक मदद प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था, जिसे कार्नवालिस भारत में ब्रिटिश राज्य के हितों के लिये हानिकारक समझता था। अतः उसने टीपू की शक्ति को कुचल देने के उद्देश्य से उसके विरूद्ध मैसूर राज्य में हस्तक्षेप करने का निर्णय लिया। और जुलाई 1789ADमें उसने टीपू के विरूद्ध हैदराबद के तत्कालीन निजामअली और मराठों के साथ एक समझौता कर लिया था, जिसके

अनुसार यह निश्चय किया गया था कि मैसूर विजय के बाद तीनों (निजाम, मराठे, अग्रेंज) मैसूर राज्य को आपस में बराबर–बराबर बाँट लेगें।

- III आंग्ल–मैसूर युद्ध का सबसे प्रमुख और तात्कालिक कारण टीपू द्वारा 1790 AD में ट्रावनकोर (केरल) राज्य पर आक्रमण का मुख्य कारण यह था कि ट्रावनकोर पर आक्रमण का मुख्य कारण यह था कि ट्रावनकोर का शासक अग्रेंजों के द्वारा उकसाये जाने पर टीपू के विद्रोही सरदारों को अपने यहाँ शरण दे रहा था और मैसूर राज्य की सीमाओं का अतिक्रमण कर रहा था।

- III आंग्ल मैसूर युद्ध के प्रारंभ में ब्रिटिश सेना कार्नवालिस का नेतृत्व जनरल मीडोज के हाथों में थी। किंतु जब जनरल मीडोज टीपू के विरूद्ध कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं कर सका तो स्वयं कार्नवालिस ने ब्रिटिश सेना का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया था।

- आर उसके द्वारा टीपू के मैसूर राज्य के अधिकांश किलों पर अधिकार स्थापित कर लिये जाने के बाद जब वह मैसूर राज्य की राजधानी श्रीरंग–पट्टम तक पहुँचने में सफल हो गया, तब टीपू के प्रस्ताव पर 1792 AD को टीपू और कार्नवालिस के मध्य एक संधि हुई जिसे ही श्रीरंगपट्टम की संधि (Treaty of Seringapatan के नाम से जाना जाता है। और इटन संधि के साथ ही 1792 AD में Third Anglo-Mysore war समाप्त हो गया।

- यद्यपि इस समय कार्नवालिस संपूर्ण मैसूर राज्य को जीतकर उसे ब्रिटिश साम्राज्य में मिला सकता था। लेकिन जब कार्नवालिस द्वारा संपूर्ण मैसूर राज्य पर अधिकार न करने के आलोचना की गई तो कार्नवालिस ने यह कहकर अपने इस निर्णय को उचित ठहराया था कि ''मैनें अपने मित्रों को शक्तिशाली बनाये बिना अपने शत्रु (टीपू) को काफी हद तक दुर्बल कर दिया''।

- श्रीरंगपट्टम की संधि के अनुसार मैसूर राज्य को जो भू–भाग अग्रेंजों को प्राप्त हुआ था उसमे मुख्यतः Dendigal डिंडीगल, बारामहल दो जिसे शामिल थे।

इसी बारामहल जिले में 1792 AD में कर्नल रीड़ द्वारा रैयतवारी प्रथा लागू की गई थी इस समय टॉमस मुनरो कर्नल रोड़ का सहायक था, और इसी टॉमस मुनरो कर्नल हीड़ का सहायक था, और इसी टॉमस मुनरो द्वारा बाद में जब वह मद्रास प्रेसिडेंसी का गवर्नर (1820 AD में) नियुक्त हुआ तब उसने संपूर्ण मद्रास प्रांत में इस रैयतवारी प्रथा को लागू कर दिया था।

Treaty of Seringapatam कब, किनके मध्य और महत्व को स्पष्ट कीजिये।

श्रीरंगपट्टम की संधि 1792 AD में TipuSultan और Lord cornwalls के मध्य हुई, इसमें मुख्य प्रावधान अग्रांकित है।

1. Tipu द्वाराMysore का आधा राज्य अग्रेंजों को सौंप देना पड़ा। जिसे बाद में समझौते के अनुसार अग्रेंजों, हैदराबाद का निजाम और मराठों ने आपस में बाँट लिया था।

2. टीपू द्वारा 30 लाख पौण्ड (3 करोड़ रूपये) युद्ध क्षति के रूप में अग्रेंजों के देने पड़े। जब तक टीपू इन दोनों शर्तो को पूरा नहीं कर देगा, तब तक टीपू के दो पुत्र अग्रेंजों के पास बन्धक के रूप में रहेगें।

3. Importance of soringapatam treaty :- इस प्रकार श्रीरंगपट्टम की संधि के फलस्वरूप मैसूर राज्य सैनिक और आर्थिक दृष्टि से अग्रेंजों द्वारा काफी हद तक दुर्बल बना दिया गय।

Fourth Anglo-Mysore war/1799 AD चतुर्थ आंग्ल मैसूर युद्ध

IV आंग्ल–मैसूर युद्ध के समय लॉर्ड वैसेजली गवर्नर जनरल के पद पर नियुक्त था।

- यद्यपि टीपू की III आंग्ल–मैसूर युद्ध में पराजय हो गई और उसके आधे राज्य पर भी अग्रेंजों ने कब्जा कर लिया था, किंतु इसके बावजूद भी टीपू अपनी पराजय को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं था। और अग्रेंजा से अपनी इस पराजय का बदला लेने के लिये उसने अपनी सैन्य शक्ति का पुनः संगठन करना प्रारंभ कर दिया था। तथ एक बार पुनः उसने अग्रेंजों के विरूद्ध फ्रास और टर्की से सैनिक मदद प्राप्त करने का प्रयास किया था।

- लॉर्ड वेलेजली भारत में फ्रासीसियों के प्रभाव को पूर्णतः समाप्त कर देना चाहता था, टीपू द्वारा अंग्रेजों के विरूद्ध फ्रांसीसियों की मदद प्राप्त करना वेलेजली उचित नहीं मानता था।

अतः उसने सबसे पहले टीपू के विरूद्ध ही अपनी आक्रामक नीति का अनुशरण किया। और मार्च 1799 AD में टीपू के विरूद्ध युद्ध घोषित कर दिया जिसके फलस्वरूप ही Fourth Anglo mysore युद्ध प्रारंभ हुआ।

- चतुर्थ आग्ल–मैसूर युद्ध में ब्रिटिश सेना के मुख्य सेनापति लॉर्ड वेलेजली का छोटा भाई आर्थर वेलेजली, जनरल स्टुअर्ट हेरिस थे।
- चतुर्थ आंग्ल–मैसूर युद्ध के दौरान अग्रलिखित दो मुख्य लडाईयाँ लड़ी गई।

1. **सिदासीर क युद्ध** :– यह लड़ाई जनरल (स्टुअर्ट) और टीपू के मध्य 5 मार्च 1799 AD में हुआ। जिसमे टीपू की पराजय हो गई।

2. **मालवैली का युद्ध** :– यह युद्ध April, 1799ADको जनरल हेरिस के नेतृत्व में अग्रेंजी सेना और टीपू के बीच में हुआ था। जिसमें भी टीपू की पराजय हुई और इस युद्ध के बाद टीपू को अपनी राजधानी श्रीरंगपट्टम में शरण लेनी पड़ी, जिसका घेरा डालकर अग्रेंजों द्वारा मई 1799 AD में श्रीरंगपट्टम पर अधिकार कर लिया गया और टीपू यहीं पर अग्रेंजों के साथ युद्ध में लड़ता हुआ मारा गया।

- टीपू की मृत्यु के बाद लॉर्ड वेलेजली द्वारा मैसूर राज्य का अधिकांश भाग ब्रिटिश राज्य में विलय कर लिया गया। तथा मैसूर राज्य का कुछ भाग मैसूर के पुराने उड़ियर को सौंप कर उसे मैसूर का शासक स्वीकर कर लिया और कृष्ण राज बहादुर उडियार ने 1799 AD में लॉर्ड वेलेजली की सहायक संधि प्रथा को स्वीकार कर लिया।

सिख–आंग्ल सम्बन्ध

रणजीतसिंह का अग्रेंजों के साथ सम्बन्ध :–

- रणजीत सिंह के द्वारा पंजाब में एक स्वतंत्र सिक्ख राज्य की स्थापना कर देने के पूर्व मुगल साम्राज्य की दुर्बलता के परिणाम स्वरूप पंजाब में घोर राजनैतिक अव्यवस्था थी, और अफगानों तथा मुगल अधिकारियों द्वारा पंजाब की जनता पर जो अत्याचार किये जाते थे उसके कारण सिक्ख सरदारों ने 100–100 व्यक्तियों को मिलाकर अनेक राजनीतिक दलों का गठन कर लिया। बाद म 1747 AD में इन सब छोटे–छोटे सिक्ख दलों को मिलाकर जस्सासिंह कलाल के नेतृत्व में उन्होंने अपना दल खालसा के नाम से एक बड़ा राजनैतिक संगठन स्थापित कर लिया था।
- बाद में दल खालसा द्वारा पंजाब में 1753 AD में राखी प्रथा प्रारंभ की जिसके अनुसार दल खालसा द्वारा प्रत्येक गांव से उसकी उपज का 1/5 भाग वसूल किया जाता था, जिसके बदले में दल खालसा द्वारा उस गांव की सुरक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया जाता था।
- बाद में दल खालसा द्वारा सिक्खों को 12 अलग–अलग जत्थों में बाँट दिया गया थ, जिन्हें ''मिसल'' कहा जाता था।

प्रत्येक मिशल का एक अध्यक्ष होता था जो निर्वाचित होता था, किंतु बाद में मिसल के अध्यक्ष एक शक्तिशाली शासक के रूप में परिवर्तित हो गये।

इस प्रकार रणजीतसिंह के पूर्व पंजाब 12 छोटे–छोटे सिक्ख राज्यों (मिसलो) में बँटा हुआ था। ये 12 मिसलें निम्न थी –

मिसल	संस्थापक
आहलूवालिया	जस्सा सिंह आहलूवालिया
सिंहपुरिया	कपूर सिंह नवाब
कन्हैया	जगसिंह
भंगी (भांगी)	हरिसिंह
शुकरचाकिय / शकर चकिया	चरतसिंह

रामगढ़िया	जस्सासिंह रामगढ़िया
निशानवालिया	सरदार संगत सिंह
करोड़ सिधिया	बघेरसिंह
दल्मवालिया	गुलाबसिंह
नकई	हीरासिंह
शाहिदी	बाबा दीप सिंह
फुलकियाँ	फूलसिंह

- रणजीत सिंह क जन्म 2 नवम्बर 1780 AD में हुआ था, उनके पिता शुकरचकिया मिशल के अध्यक्ष थे उनका नाम महासिंह था। गुजराँवाल उनकी राजधानी थी।
- 1792 AD में महसिंह की मृत्यु हो जाने के बाद रणजीत सिंह का अध्यक्ष नियुक्त हुआ। किंतु इस समय रणजीत सिंह वयस्क नहीं था। अतः उसक दीवान लखपतराय उसका संरक्षक नियुक्त हुआ।
- रणजीतसिंह के गद्दी पर बैठने के समय सिक्ख राज्य भौगोलिक दृष्टि से दो भागों में बटाँ हुआ था।
- अधिकांश सिक्ख राज्य सतलज नदी के उत्तर–पश्चिम में स्थित था जबकि कुछ सिक्ख राज्य जैसे– नाभा, पटियाला, कैथल, जींद में सतलज नदी के पूर्व में स्थित थे। इन चारों सिक्ख राज्यों को ही sikhassatley state के नाम से जाना जाता था।

ये चारों सिक्ख राज्य फुलकियाँ मिशल के माने जाते थे।

- रणजीत सिंह इन सभी सिक्ख राज्यों को जीतकर पंजाब में एक संगठित और स्वतंत्र सिक्ख राज्य की स्थापना करना चाहता था, और 1798 AD में Ranjit Singh ने अहमदशाह अब्दाली के पौत्र जमानशाह द्वारा पंजाब पर आक्रमण किये जाने के दौरान उसकी जो मदद को थी, उसके फलस्वरूप जमानशाह ने लाहौर रणजीत सिंह को सौंप दिया। इस प्रकार रणजीतसिंह की पहली राजनैतिक उपलब्धि 1798AD में लाहौर उसे प्राप्त हो जाना।
- इसके बाद 1802 AD में रणजीतसिंह ने अमृतसर को भी जीतकर अपने अधिकार में कर लिया।

- किंतु जब रणजीतसिंह ने सतलज नदी के पूर्व में स्थित सिक्ख राज्यों पर आक्रमण करना प्रारंभ किया तब अग्रेंजों द्वारा उसक कडा विरोध किया था, क्योंकि इन सिक्ख राज्यों को अग्रेंज अपना संरक्षित प्रदेश मानते थे।

  किंतु जब 1808 AD में स्पेन प्रायद्वीप के युद्ध में असफल हो जाने के बाद नेपोलियन का पतन प्रारंभ हो गया। और भारत पर नेपोलियन के आक्रमण की संभावन, समाप्त हो गई, तब तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नर–जनरल लार्ड मिन्टो ने रणजीतसिंह को सतलज नदी के पूर्व में स्थित सिक्ख राज्यों पर आक्रमण न करने की (स्पष्ट धमकी दी थी। और इन राज्यों पर रणजीतसिंह के आक्रमणों को ब्रिटिश राज्य पर आक्रमण किया जाना माना जायेगा

- लॉर्ड मिन्टों ने 1809 AD में रणजीत सिंह को चार्ल्स मेटकॉफ के माध्यम से एक संधि करने, 25 अप्रैल, 1809 AD को विवश किया जिसे ही treaty of Amritsar के नाम से जाना जाता है। इस संधि के माध्यम से रणजीतसिंह व अग्रेंजों के मध्य सतलज नदी सीमा रेखा बन गई।

Treaty of Amritsar (अमृतसर की संधि) रणजीत सिंह और तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नर जनरल लॉर्ड मिन्टों के बीच अप्रैल 25, 1809 AD को हुई, जिसके मुख्य प्रावधान निम्नलिखित थे।

1. अग्रेंजों द्वारा सतलज नदी के उत्तर–पश्चिम में स्थित जो 45 परगने रणजीत सिंह के अधिकार में थे, उन पर उसका अधिकर स्वीकार कर लिया गया।
2. सतलज नदी के पूर्व में स्थित सिक्ख राज्यों पर (सिंख सतलज स्टेटस) रणजीत सिंह आक्रमण नहीं करेगा, जबकि सतलज नदी के उत्तर–पश्चिम में स्थित सिक्ख राज्यों में अग्रेंज हस्तक्षेप नहीं करेंगें।
3. भविष्य में रणजीतसिंह और अग्रेंज दोनों परस्पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखेगें।

महत्व

इस प्रकार अमृतसर की संधि से सतलज नदी रणजीतसिंह और अग्रेंजें के मध्य स्थायी सीमा रेखा बन गई।

- अमृतसर की संधि के बाद जब अंग्रेजों द्वारा सतलज नदी के उत्तर–पश्चिम में स्थित सिक्ख राज्यों में अग्रेजों के द्वारा हस्तक्षेप करने की संभावना समाप्त हो गई, तब रणजीतसिंह ने 1809 AD में सर्वप्रथम कांगडा, 1813 AD में अटक, 1818 AD में मुल्तान, 1819 कश्मीर और 1823 में पेशावर को जीतकर अपने अधिकर में कर लिया।

रणजीतसिंह का प्रशासन/शासन–व्यवस्था

- रणजीत सिंह द्वारा सिक्ख राज्य के लिये जो शासन व्यवस्था गठित की गई उसकी मुख्य बाते निम्नलिखित थी। (A) केन्द्रीय शासन केन्द्रिय सरकार में रणजीतसिंह द्वारा निम्न पाँच मंत्री नियुक्त किये गये :–

(1) वजीर :– (प्रधानमंत्री होता था, और उसने इस पद पर ध्यान सिंह डोगरा को नियुक्त किया था और उसे 'राजा कला' की उपाधि दी थी।

(2) विदेश मंत्री :– इस पद उसने फकीर अजीज–उद्दीन/ को नियुक्त किया। (फकीर अजीजुद्दीन)

(3) वित्तमंत्री :– इस पद पर उसने पहले भवानीदस और उसके बाद गंगराम और दीनानाथ को नियुक्त किया।

(4) ग्रहमंत्री :– यह वास्तविक रूप में शाही परिवार से सम्बन्धित विभाग का अध्यक्ष होता था। और इस पद उसने नौरूद्दीन को नियुक्त किय।

(5) सेनापति :– इस पद उसने पहले दीवान मोखमसिंह, दीवान चन्द और उसके बाद हरिसिंह नलुवा को नियुक्त किया गया। (B) प्रान्तीय शसन रणजीत सिंह द्वारा सिक्ख राज्य को निम्न चार प्रांतों में विभाजित किया :– 1. मुल्तान 2. लाहौर 3. पेशावर 4. काश्मीर

- प्रांत को सूबा कहा जाता था और सूबा का अध्यक्ष नाजिम कहलाता था।
- रणजीतसिंह द्वारा प्रत्येक प्रांत या सूबों को अनेक प्रांत/सूब किल जिलों में विभक्त किया, जिन्हे तालुका कहा जाता था जिले का अध्यक्ष कारदार कहलाता था।
- प्रत्येक जिले या तालुका में 50 से लेकर 100 गाँव सम्मिलित थे, और प्रत्येक गांव का प्रशासन चलाने ग्राम पंचायत के लिये एक पंचायत होती थी।

(C) सैनिक व्यवस्था :– रणजीत सिंह के द्वारा 75,000 सैनिकों की एक अत्यंत शक्तिशाली सेना का गठन किया गया था। जिसे अग्रेंज इग्लैण्ड के शासक फ्रोमवैल की लोह सेना Iron Army से करते थे, जो निम्न दो भागों में विभाजित की गई थी। (1) फौज–ए–खास (2) फौज–ए–बेकवायद

(1) फौज–ए–खास रणजीत सिंह की मुख्य सेना फौज–ए–खास थी, जो तीन भागों में विभाजित थी –

(A) पैदल सेना :–पैदल सेना का अध्यक्ष पैदल व भूरा रणजीत सिंह ने जनरल वन्तूरा नामक फ्रांसीसी जनरल को बनाया।

(B) घुड़सेना :– घुडसवार सेना का अध्यक्ष अलार्द नामक फ्रांसीसी जनरल को बनाया।

(1) तोपाखाना :– तोपखाना का अध्यक्ष जनरल कोर्ट तौर गार्डनर नामक दो फ्रासीसी जनरलों को बनाया गया।

(2) फौज–ए–बेकवायद :– फौज–ए–बेकवायद मुख्यतः घुड़सवार सेनाएं थी, जो दो भागों में विभाजित थी।

(A) घुडचदा खास :– इसके अन्तर्गत घुड़सवारों को अपना घोड़ा स्वयं लाना पड़ता था, और उसको वेतन राजकोष से दिया जाता थ।

(B) मिसलदार :–ये वे घुड़सवार थे, जिनके राज्यों (मिसलो) को रणजीतसिंह ने अपने राज्य में मिला लिया, था और वे अपनी घुड़सवार सेना के साथ उसकी सेना में सम्मिलित हो गये थे।

(D) भू– राजस्व पद्धति :–रणजीत सिंह के द्वारा जे भूराजस्व पद्धति लागू की गई थी, उसके अन्तर्गत उसने 1823 AD तक बँटाई पद्धति (गल्ला–बक्शी) और उसके बाद अर्थात् 1823 AD के बाद गल्ला–बक्शी की जगह पर कनकूत, पद्धति को अपनाई गई।

कनकूत पद्धति के अन्तर्गत खड़ी फसल पर ही भूमि कर नगदी के रूप में लागू कर दिया जाता था। भूमि–कर की दर उपज का 1/3 से लेकर 2/5 या 40% तक थी।

न्याय–व्यवस्था

- रणजीत सिंह के समय में अदालत–ए–आला सर्वोच्च न्यायालय को कहा जाता था, जिसका अध्यक्ष न्यायधीश होता था। राज्य का उच्च न्यायालय लाहौर में था इसक सर्वोच्च न्यायधीश रणजीत सिंह स्वयं था।
- प्रांतों में नाजिम और जिलों में कारदारों को ही न्यायिक अधिकार प्रदान थे।

रणजीतसिंह के बाद आंग्ल–सिक्ख सम्बन्ध (1839–49)

- रणजीत सिंह की मृत्यु 21 जून 1839 AD को पक्षाघात के कारण हो गई, मृत्यु के बाद उसके तीन उत्तराधिकारी (1) खड़ग सिंह (1839–40) (2) शेरसिंह (1841–43) (3) दलीपसिंह (1843–49) पंजाब की गद्दी पर बैंठे।
- रणजीतसिंह के ये तीनो उत्तराधिकारी पूर्णतया अयोग्य और दुर्बल थे। जिसके फलस्वरूप पंजाब में सिक्ख और डोगरा सरदारों की प्रति उदासीनता काफी बढ़ गई थी। और ये दोनों गुट दरबार में अपना–अपना प्रभाव बढ़ाने के लिये एक दूसरे के विरूद्ध षड़यंत्र रचने लगे।

- सिंख शासकों की कमजोरी और सिक्ख तथा डोगरा सरदारों के पारस्परिक संघर्ष के कारण पंजाब में सिक्ख सेना का प्रभाव काफी बढ़ गय था। और सिक्ख सेना अपने शासकों और सरदारों के आदेशों को न मानकर अपने लिये अलग से खालसा पंचायत स्थापित करली, जिसके आदेश पर ही सेना कार्य करती थी।
- रणजीत सिंह के इन दुर्बल उत्त्राधिकारियों और सिंख सरदारों तथा डोगरा सरदारों की पारस्परिक प्रतिद्वंता का लाभ उठाकर अग्रेजों द्वारा पंजाब के आंतरिक मामलों में जो हस्तक्षेप किया गया, उसके फलस्वरूप अग्रेंजों और सिक्खों के बीच निम्नलिखित दो आंग्ल–सिक्ख युद्ध लड़े गये।

प्रथम आंग्ल–सिख युद्ध / First Angle sikh war (1845-46)

- प्रथम आंग्ल–सिख युद्ध के दौरान लॉर्ड हार्डिग गवनर जनरल के पद पर था, जबकी दलीप सिंह पंजाब का शासक था।
- प्रथम आग्ल–सिंख युद्ध का मुख्य कारण सिंख सरदारों की स्वार्थ परता और उसके फलस्वरूप अग्रेजों का पंजाब के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करना था।
- प्रथम आंग्ल–सिख युद्ध के दौरान अग्रांकित पांच लडाईयाँ लड़ी गई।
- 1846–46 सिक्खों सरदारों की स्वार्थ परता व अंग्रेजों ग्रंथ जॉब में हस्तक्षेप

1. मुदकी का युद्ध 18 दिस. 1845 AD
2. फीरोजशाह या फीरूशाह की लडाई 21 दिसम्बर 18
3. बद्दोवाल की लडाई 21 जनवरी, 1846
4. आलीवाल की लडाई 28 जनवरी, 1846
5. सबराओं का युद्ध 10 फरवरी, 1846

उपरोक्त पांच युद्धों में केवल बुद्दोवल के युद्ध में सिख सेना की विजय हुई, बाकी चारो युद्धों में अग्रेंज विजय हुये थे।

और प्रथम आंग्ल–सिक्ख युद्ध की सबसे प्रमुख और निर्णायक लडाई सबराओं की लडाई थी, जिसमें अग्रेंजों की बहुत ही कठिन संघर्ष और सिंख सेना के सेनानायकों लालसिंह और तेजसिंह द्वारा किये गये विश्वासघात के कारण ही विजय हुई थी। इस युद्ध में हारने के साथ ही सिंख सेना ने समर्पण कर दिया था।

- प्रथम आग्ल–सिख युद्ध के बाद सिख शासक दलीप सिंह और अग्रेजों के बीच 9 मार्च 1846 को लाहौर की संधि हुई, इस संधि के द्वारा अंग्रेजों ने सिक्ख राज्य को आर्थिक और सैनिक दृष्टि से काफी हद तक दुर्बल बना दिया गया।

लाहौर की संधि कब, किनके मध्य और महत्व स्पष्ट कीजिये।

- लाहौर की संधि प्रथम आग्ल सिंख युद्ध के बाद 9 मार्च 1846 AD में सिक्ख शासक दलीपसिंह और अग्रेंजों के बीच (लॉर्ड हार्डिग गवर्नर जनरल) हुई थी, जिसके मुख्य प्रावधान अग्रलिखित थे।

(1) अग्रेजों द्वारा दलीप सिंह को पंजाब का शासक, उसकी माँ रानी जिंदन को दलीपसिह का संरक्षक और लालसिंह को वजीर स्वीकार कर लिया गया।

(2) दलीप सिंह द्वारा डेढ़ करोड़ रूपया (1½ करोड़ रूपये) युद्ध क्षति के रूप में अग्रेजों को दिया जाएगा। जिसके बदले में उसने कश्मीर और हजारा के प्रदेश अग्रेंजों को सौंप दिया।

(3) सिखों के तोपखाने पर अग्रेजों द्वारा अधिकार कर लिया गय।

(4) सिक्ख सेना की संख्य घटाकर 12,000 घुड़सवार और 20,000 पैदल सेना कर दी गई।

(5) सतलज नदी के पूर्व में स्थित जो प्रदेश सिखों के अधिकर में थे वे दलीप सिंह द्वारा अग्रेजों को सौंप दिये गये।

पंजाब में एक ब्रिटिश रेजीडेन्ट की नियुक्ति कर दी गई।

महत्व :– इस प्रकार लाहौर की संधि के बाद अग्रेजों द्वारा दलीप सिंह को आर्थिक व सैनिक दृष्टि से काफी दुर्बल बना दिया।

For Prelime :- दलीप सिंह द्वारा हजारा और कश्मीर के जो प्रदेश लाहौर की संधि के अन्तर्गत जो अग्रेजों को दिये गय थे, बाद में अग्रेंजों ने कश्मीर 50 लाख रूपये में डोगरा सरदार गुलाब सिंह को बेच दिया। और उसे ही कश्मीर का स्वतंत्र शासक स्वीकार कर लिया था।

- बाद में लालसिंह और रानी जिंदन के द्वारा गुलाबसिंह के विरूद्ध कश्मीर में जो विद्रोह भड़का दिया गया था, उसके फलस्वरूप अग्रेंजों ने रानी जिंदन और लालसिंह को अपने–अपने पदों से हटा दिया गया, और दलीपसिंह को अग्रेजों के साथ 22 दिसम्बर 1846 AD को भैरोंवाल की संधि के नाम से एक और संधि करने पर विवश किया, जिसके फलस्वरूप बाद में पंजाब के आंतरिक मामलों में ब्रिटिश रेजीडेंट के माध्यम से अग्रेंजों का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया।

भैरोवाल की संधि कब, किनके मध्य और महत्व बताइये।

भैरोंवाल की संधि दिसम्बर 1846 AD में सिख शासक दलीपसिंह और अग्रेंजों के मध्य हुई थी, जिसके मुख्य प्रावधान अग्रांकित है – (1) 8 सरदारो की संरक्षक परिषद बनाई (2) रानी जिब्दल को पैर लाख से (3) वहा सहायक सेना रखी 20 लाख रूपये वार्षिक खर्चो देगे।

1. ब्रिटिश रेजीडट सरहेजरी लारेन्स की अध्यक्षता में दलीप सिंह की मदद के लिये आठ सिंख सरदारों की एक संरक्षक परिषद नियुक्त कर दी गइ थी।
2. रानी जिंदन को दलीप सिंह के संरक्षक पद से हटा दिया गय, उसकी पेशन 1½ लाख रूपये वार्षिक निर्धारित कर दी गई।

3. दलीप सिह की मदद के लिये एक अग्रेंजी सहायक सेना पंजाब में नियुक्त कर दी गई, जिसके खर्चे के बदले में दलीपसिंह द्वारा 20 लाख रूपये वार्षिक अग्रेंजों को दिये जाएगे।

महत्व :– भैरोवास की संधि के फलस्वरूप बाद में ब्रिटिश रेजीडेंट के माध्यम से पंजाब के आंतरिक प्रशासन पर भी अग्रेजों का पूर्ण नियन्त्रण स्थापित हो गया।

द्वितीय आंग्ल सिक्ख वार, 1848–49

द्वितीय आंग्ल–सिक्ख युद्ध के दौरान लॉर्ड डलहौजी गवर्नर जनरल के पद पर नियुक्त था, तथा दलीप सिंह पंजाब का शासक था।

II आग्ल–सिंख युद्ध का सबसे मुख्य तात्कालिक कारण मुल्तान के गवर्नर (नाजिम) मूलराज द्वारा अंग्रेजों के विरूद्ध विद्रोह कर देना।

मूलराज के विद्रोह का कारण यह था कि जब मूलराज ने लॉर्ड डलहौजी द्वारा मांगी गई धनराशी देने से इनकार कर दिया था, तब डलहौजी ने मूलराज को हटाकर उसको जगह पर खानसिंह मान को मुल्तान का गवर्नर नियुक्त कर दिया था, और जिन दो ब्रिटिश अधिकारियों एण्डरसन और एगन्यू की उपस्थिति में मूलराज ने खानसिंहमान के मुल्तान के गवर्नर का पद भार सौंपा था। उन दोनों ब्रिटिश अधिकारियों की उसी दिन सिंख सैनिकों द्वारा हत्या कर दी गई। जिसका आरोप डलहौजी ने मूलराज पर लगाकर उसे गिरफ्तार करने का आदेश दे दिया, अतः अपनी आत्मरक्षा के लिये मूलराज ने व्रिदोह किया था।

- डलहौजी ने मूलराज के इस विद्रोह को दबाने की बजाय पंजाब के अन्य भागों में भी फैल जाने दिया, और अंत में इस विद्रोह को दबाने का बहाना लेकर डलहौजी ने पंजाब में जो सैनिक कार्यवाही की उसी के फलस्वरूप यह II आग्ल सिंख युद्ध प्रारंभ हुआ।
- इस युद्ध के दौरान ब्रिटिश सेना का सेनापति जनरल गफ और बाद में चार्ल्स नेपीयर था, जबकि सिक्ख सेना का कमांडर शेरसिंह था।
- II जनरल गफ/चार्ल्स नेपियर शेरसिह इस आग्ल–सिंख युद्ध के दौरान तीन प्रमुख लडाईयाँ लड़ी गई।

(1) रामनगर का युद्ध

(2) चिलिमानवाला क युद्ध

(3) गुजरात का युद्ध

- प्रथम दो लडाईयाँ अनिर्णायक रही थी, किंतु बाद में डलहौजी ने जनरल लॉर्ड ह्यू गफ की जगह पर को ब्रिटिश सेना का कमांडर नियुक्त किया था, और अंत में चार्ल्स नेपियर के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना द्वारा फरवरी 1849 AD में लड़े गये गुजरात के युद्ध में शेरसिंह के नेतृत्व में सिक्ख सेना को पराजित कर दिया गया। और इसके साथ ही सिंख सेना ने समर्पण कर दिया।
- अंत में मार्च 1849 AD में लॉर्ड डलहौजी द्वारा पंजाब का ब्रिटिश राज्य में विलय कर लिया गया।
- मार्च 1849 डलहौजी पंजाब विलय

1857 का विद्रोह

1857 के विद्रोह को भारतीय स्वतंत्रता का सग्राम कहना कहाँ तक उचित है?

या

1857 के विद्रोह का वास्तविक प्रवृत्ति क्या थी ?

या

विद्रोह का यथार्थ स्वरूप और चरित्र क्या था स्पष्ट कीजिये ?

- 1857 के विद्रोह की वास्तविक प्रवृत्ति क्या थी, इसके बारे में विभिन्न विद्वानों द्वारा अलग–अलग मत व्यक्त किये गये जो अग्रलिखित है :–

(1) जहाँ तक अग्रेंज इतिहासकारों का प्रश्न है, अधिकांश अग्रेंज इतिहासकारा जिनमें **Jhon kaye, "A History of sepoy in India" Seeley, "A extinction of the British Rule" G. B. Malleson," History of the Indian Mutiny"** आदि अंग्रज इतिहासकारों ने इस विद्रोह को मूलतः सैनिक विद्रोह ही मानते है। उनका मानना है कि यह विद्रोह भारतीय सैनिकों द्वारा ही प्रारंभ किया था, और उनका मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश शासन से मुक्ति प्राप्त करना, और जहाँ तक भारतीय राजाओं और जनता का प्रश्न है उनकी इसमें कोई भागीदारी नहीं रहीं।

(2) T.R. Holmes (T.R. होक्ज)"History of Indian mutiny"ने इस विद्रोह को सभ्यता और बर्बरता के बीच युद्ध माना (a confilict between civilisation and barbarism) हैं।

(3) Sir James outram and william Taylor इस विद्रोह को अग्रेंजों के विरूद्ध हिंदू और मुसलमानों का सामूहिक षड़यंत्र माना।

(4) Ashok Mehata (अशोक मेहता) ने अपनी पुस्तक"The Great Rebellian" में इस विद्रोह को राष्ट्रीय विद्रोह (The Rebellion of 1857 was national in character) के नाम से पुकारा था।

(5) विनायक दामोदर राव सावरकर (V.D. Sararkar) पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने अपनी पुस्तक "The Indian waar of Independence" में इस विद्रोह को सैनिक विद्रोह न मानकर भारतीय स्वतंत्रता का संग्राम माना है।

(6) R.C. Majumdar (आर. सी. मजूमदार) ने अपनी पुस्तक ''The Sepoymutiny and the Revolt of 1857"में और S.N. Sen ने अपनी पुस्तक " Eighteen Fifty-Seven" में इस विद्रोह की प्रकृति के बारे में जो विचार व्यक्त किये वे अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते है।

जहाँ तक R.C. Majumdar का प्रश्न है उन्होंने इस विद्रोह को भारतीय स्वतंत्रता का सग्राम न मानकर इसे सैनिक विद्रोह ही माना है, जैसा कि उन्होंने लिखा है कि 1857 का यह तथाकथित स्वतंत्रता संग्राम न प्रथम था, न राष्ट्रीय था, न स्वतंत्रता संग्राम था बल्कि यह मुख्यतः सैनिक विद्रोह था।

किंतु R.C. Majumdar के विपरीत S.N. Sen ने इस विद्रोह को सैनिक विद्रोह न मानकर राष्ट्रीयता के अभाव में भी भारतीय स्वतंत्रता का संग्राम स्वीकार किया है। क्योंकि S.N. Sen ने लिखा है कि यदि किसी देश की जनता द्वारा विदेशी शासन के विरूद्ध यदि विद्रोह किया जाता है तो उसमें चाहे जनता की भागीदारी बहुत अधिक न हो फिर भी हम उसे स्वतंत्रता संग्राम मान सकते हैं।

इसी आधार पर S.N. Sen ने 1857 के विद्रोह को सैनिक विद्रोह न मानकर स्वतंत्रता संग्राम माना है।

शशिभूषण चौधरी ने अपनी पुस्तक "The Civil Rebellion in the Indian mutiny" में इस विद्रोह की प्रकृति के बारे में अपना जो मत प्रकट किया वह भी काफी महत्वपूर्ण है, S.B. Chaudhru ने मुख्यतः अपनी इस पुस्तक में अवध के किसानो के द्वारा इस विद्रोह में जो बड़ी संख्या में भाग लिया गया था, उसे अपने अध्ययन का विषय बनाकर उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि अवध के किसानों के द्वारा इस विद्रोह में जो बडे पैमाने पर भाग लिया गया, वह इस बात का प्रमाण है कि यह विद्रोह केवल सैनिकों तक ही सीमित नहीं था, अपितु यह एक बहुत बड़ा जन विद्रोह था।

इस प्रकार उपरोक्त इतिहासकारों द्वारा 1857 AD के इस विद्रोह के बारे में अलग–अलग मत व्यक्त किये गये है, किंतु अब जहॉ तक अधिकांश भारतीय इतिहासकारों का प्रश्न है, अधिकांश भारतीय इतिहासकार इस विद्रोह को सैनिक विद्रोह न मानकर भारतीय स्वतंत्रता का संग्राम ही स्वीकार किया है।

और यह मत काफी हद तक सही माना जा सकता है। और अग्रलिखित आधारों पर इस विद्रोह को भारतीय स्वतंत्रता का संग्राम माना गया –

निश्चित रूप से यह विद्रोह भारतीय सैनिकों द्वारा प्रारंभ किया गया था, किंतु ज्यो–ज्यो सैनिकों को सफलता मिलती गई, इस विद्रोह में जनता भी सम्मिलित हो गई। और इस प्रकार यह विद्रोह जो सैनिक विद्रोह के रूप में प्रारंभ हुआ, वह अंत में जन विद्रोह में परिवर्तित हो गया।

इस विद्रोह की समाप्ति के बाद अग्रेंजों द्वारा जिस प्रकार भारतीय जनता पर जो अत्याचार किये गये, और बड़ी संख्या में अग्रेंजों द्वारा भारतीय लोगों को मरवाया गया, यह भी इस बात का प्रमाण है कि इस विद्रोह में बड़ी संख्या में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा भाग लिया गया।

किसी भी घटना की समाप्ति के बाद उसके बाऐं में जनता में उस घटना की जो छवि बनती है, उसे ही उस घटना का वास्तविक स्वरूप माना जा सकता है और निश्चित रूप से 1857 के इस विद्रोह को बाद में भारतीय जनता द्वारा भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में ही स्वीकार किया गया।

हमारे सभी राष्ट्रीय नेताओं द्वारा इस विद्रोह को भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में मानकर, इसे अपनी प्रेरणा का स्त्रोत माना था। उदाहरण के लिये सुभाषचन्द्र बोस ने अपनी पुस्तक The Indian Struggle में इस विद्रोह की विवेचना करते हुये लिखा है कि 1857 का यह विद्रोह सैनिक विद्रोह न होकर एक बहुत बड़ी क्रांति का प्रतीक था और निश्चित रूप से भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम था।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीयता के अभाव और अन्य अनेक कमियों के बावजूद भी इस विद्रोह को हम निश्चित रूप से भारतीय स्वतंत्रता का संग्राम मान सकते है।

1857 के विद्रोह के क्या कारण थे, और उसके क्या परिणाम निकले

1857 के विद्रोह की गिनती भारतीय इतिहास के अत्यंत महत्वपूर्ण घटनाओं में की जाती है। और जहाँ तक इस विद्रोह के मुख्य कारणों का प्रश्न है, उनकी विवेचना हम अग्रलिखित रूपों में कर सकते है।

(1) **राजनैतिक कारण** :– लॉर्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति को इस विद्रोह के राजनैतिक कारणों में सबसे प्रमुख माना जाता है, क्योंकि डलहौजी द्वारा अपनी साम्राज्यवादी नीति के अन्तर्गत जिन भारतीय राज्यों या राजवंशों को समाप्त कर दिया गया था, उन्हीं राज्यों के अपदस्थ शासकों ने इस विद्रोह में मुख्य रूप से भाग लिया।

(2) **आर्थिक कारण** :– अग्रेजों द्वारा भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद जो व्यापारिक और औद्योगिक नीति लागू की गई, उसके फलस्वरूप ही भारत का व्यापार और उद्योग सभी चौंपट हो गये। इसी तरह स्थायी बन्दोबस्त, रैयतवाड़ी प्रथा और माहलवारी प्रथा जो भूराजस्व पद्धतियाँ अग्रेंजों द्वारा भारत में लागू की गई, उसके फलस्वरूप किसानों की आर्थिक दशा अत्यंत खराब हो गई और इस प्रकार किसानों, व्यापारियों, शिल्पियों और जनता के सभी वर्गो में ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध गहरा असंतोष व्याप्त हो गया और वे ब्रिटिश शासन से मुक्ति प्राप्त करना चाहते थे।

(3) **सामाजिक कारण** :– अग्रेज अपने आपको श्रैष्ठ नस्ल का और भारतीयों को घटिया नस्ल का मानते थे, और अग्रेजों द्वारा पग–पग पर भारतीयों के साथ जो दुव्यवहार और अपमान किया जाता था और इसके ऊपर जो तरह–तरह के अत्याचार किये जाते थे इसके फलस्वरूप ही धीरे–धीरे अग्रेजों के विरूद्ध भारतीय जनता में असंतोष बढ़ता जा रहा था।

यही नहीं बल्कि कुछ अग्रेज गवर्नर जनरलों द्वारा भारत में जो सामाजिक सुधार किये गये उसे भी भारत की रूढ़ीवादी और उच्च वर्ग ने अपनी सामाजिक व्यवस्था में अग्रेजों का अनुचित हस्तक्षेप माना गया।

(4) **धार्मिक कारण** :– भारत में ईसाई मिशनरियों द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार के लिये जो तरह–ततरह के प्रयास किये जा रहे थे, उसके फलस्वरूप भारतीय जनता में यह विश्वास उत्पन्न हो गया था कि अग्रेंज भारत में हिंदू धर्म को समाप्त करके संपूर्ण देश को ईसाई देश में परिवर्तित कर देना चाहते है। और इस प्रकार यह भी अग्रेंजों के विरूद्ध भारतीय जनता में असंतोष का एक मुख्य कारण बन गया।

(5) **सैनिक कारण** :– अग्रेजों द्वारा भारतीय सैनिकों के साथ वेतन, भत्तों और पदोन्नति के सम्बन्ध में जो भेदभाव किया जाता था उसके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध भारतीय सैनिकों में भी गहरा असंतोष व्याप्त था, और उनमें विद्रोह की भावना उत्पन्न हो गई।

इस प्रकार उपरोक्त कारणों के फलस्वरूप सैनिकों सहित भारत के सभी वर्गों में ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध गहरा असंतोष फैल चुका था और अन्त में चर्बी युक्त कारतूसों ने इस असंतोष में चिंगारी का काम किया, जिसके फलस्वरूप ही अंत में यह विद्रोह प्रारंभ हुआ। और 1857 का यह विद्रोह सर्वप्रथम 10 मइ, 1857 को मेरठ से प्रारंभ हुआ और धीरे–धीरे यह विद्रोह भारत के कई प्रदेशों में फैल गया, जिनमें दिल्ली, आधुनिक मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश और बिहार प्रमुख थे। किंतु अन्तंत अग्रेंजों द्वारा इस विद्रोह का जुलाई 1858 तक पूर्णतः दमन कर दिया गया।

विद्राह के परिणाम :–

यद्यपि यह विद्रोह पूर्णतः असफल रहा कितु फिर भी इस विद्रोह के निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिणाम अग्रलिखित है।

1. इस विद्रोह के बाद भारत में East India Company का शासन समाप्त हो गया और भारत का शासन ब्रिटिश सम्राट के हाथों में चला गया।

2. इस विद्रोह के बाद अग्रेंजों द्वारा भारत में साम्राज्य–विस्तार की नीति का परित्याग कर दिया गया और 1858 AD में महारानी विक्टोरिया की घोषणा में भारतीय शासकों को उनके अस्तित्व, गौरव, सम्मान की पूर्ण रक्षा करने का आश्वासन दिया गया।

3. यह विद्रोह मुख्यतः सैनिकों द्वारा ही किया गया था अतः भविष्य में इस प्रकार के विद्रोह की पुनरावृत्ति न हो सके अतः इस उद्देश्य से भारतीय सैनिकों की संख्या घटाकर एक लाख चालीस हजार (1,40,000) और अग्रेज सैनिकों की संख्या 45,000 से बढ़ाकर 65,000 कर दी, तथ अब जातिय और प्रांतीय आधार पर रेजिमेंटस का घटन किया गया जैसे – राजपूत रेजीमेंट, मराठा रेजीमेंट जाट रेजीमेंट आदि।

4. इस विद्रोह के बाद अब ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रशासन से भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने की नीति प्रारंभ की गई। जिससे की समय–समय पर ब्रिटिश सरकार को भारतीय जनता के असंतोष की जानकारी प्राप्त हो सके, अैर इसी उद्देश्य से 1861 के भारत परिषद अधिनियम Indian Councils Act, 1861 के अनुसार केन्द्रीय विधान सभा में तीन भारतीय सदस्यों को नियुक्त किया गया जो निम्न थे –

   1. पटियाला के महाराजा नरेन्द्रसिंह
   2. बनारस के महाराजा
   3. ग्वालियर के प्रधानमंत्री सर दिनकर राव

1857 के विद्रोह की असफलता के क्या कारण थे?

1857 के विद्रोह की असफलता के मुख्य कारण अग्रलिखित थे –

1. इस विद्रोह की असफलता का सबसे मुख्य कारण इस विद्रोह का संपूर्ण भारत में न फैलकर दिल्ली उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश और बिहार आदि कुछ प्रांतों तक ही सीमित रहना था, जिसके फलस्वरूप अग्रेंज आसानी से इस विद्रोह को दबाने में सफल हो गये।

2. इस विद्रोहियों के पास सैनिक और आर्थिक साधनों का अभाव होना ।

3. विद्रोहियों को भारतीय राजाओं का समर्थन प्राप्त न होना, इस विद्रोह की असफलत का मुख्य कारण था।

4. इस विद्रोह की असफलता का मुख्य कारण योग्य नेतृत्व का अभाव होना। इस विद्रोह में बहादुरशाह, नाना साहेब, लक्ष्मीबाई, तात्याटोपे आदि जो प्रमुख नेता थे, इनमें से दुर्भाग्य से कोई भी ऐसा कुशल और योग्य संघटनकर्त्ता और सेनापति नहीं था, जो इस विद्रोह को सफलतापूर्वक संचालित कर सके।

5. इस विद्रोह की कोई निश्चित योजना और विद्रोहियों के सामने एक ठोस लक्ष्य का अभाव होना भी इस विद्रोह की असफलता का एक मुख्य कारण था।